मक़तूलः फ़ातेहे आज़म

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
हिन्दी रूपः डॉ० आरिफ़ अब्बास

वाक़िअ-ए-कर्बला से पहले आम तसव्वुर ये था कि फ़तह के लिए लश्कर ज़रूरी है, असलहों के ज़ख़ीरे लाज़िम हैं, क़तार दर क़तार फ़ौज हो जो मुख़ालिफ़ों को तहस-नहस कर दे, उनको मिटा दे, उनके अफ़राद असीर हो जाएं तो क़त्ल होने वाले लुटने वाले, क़ैदी बन जाने वाले मफ़तूह कहलाते थे और क़त्ल करने वाले, लूटने वाले, क़ैदी बनाने वाले फ़ातेह के लक़ब से सरफ़राज़ होते थे लेकिन इमाम हुसैन[अ०] ने फ़त्ह और शिकस्त का मेयार ही बदल दिया और तारीख़ के धारे का रुख़ मोड़ दिया, क़त्ल होकर भी, लुटकर भी, क़ैदी बन कर भी फ़त्ह हासिल की जा सकती है और वह भी वक़्ती नहीं बल्कि अबदी फ़त्ह, अगर आप मेरी बात पर ग़ौर करें तो आपको मालूम होगा कि याद हमेशा जीतने वाले की बाक़ी रहती है हारने वालों का नामो निशान मिट जाता है, न तो कोई हारने वालों की याद में जलसे करता है न जुलूस निकाले जाते हैं। दुनिया में अगर कहीं निकलते हैं तो बस Victory Processions निकलते हैं या जीत का जश्न मनाया जाता है। आपको इंसानी तारीख़ में कहीं नहीं मिलेगा कि हारने वालों की याद में कोई प्रोग्राम मुनअक़िद हुआ। ये बात इंसान की फ़ितरत में शामिल है कि वह जीत की याद मनाता है। इमाम हुसैन की याद में गली-गली में उठने वाले जुलूस और गाँव-गाँव में मुनअक़िद होने वाली मजलिसें इस बात का सुबूत हैं कि इमाम हुसैन ने कर्बला की जंग में यज़ीदी फ़ौज को हर तरह से बुरी शिकस्त दी। आज दुनिया में कहीं कोई यज़ीद की याद मनाने वाला नहीं, लेकिन इमाम हुसैन[अ०] की याद मनाने वाले हर जगह मौजूद हैं। जिस से इस बात का अंदाज़ा लगाना आसान है कि कर्बला में जीत किसकी हुई। कर्बला की ये जंग ऐसी अकेली जंग है, जिसमें ख़ंजरों को गरदनों ने मात दी, कर्बला की जंग एक ऐसी जंग है, जिसमें तलवार पर गले के ख़ून को कामयाबी मिली, कर्बला की जंग एक ऐसा मारका है, जिसमें नेज़ों को सीनों ने मोड़ दिया, कर्बला एक ऐसा वाहिद वाक़िआ है, जिसमें तश्नगी ने पानी को मात दी, कर्बला की जंग में असलहों को नहीं क़ुव्वते बर्दाश्त को जीत मिली, कर्बला के मैदान में फ़ौज की कसरत को नहीं इस्तेक़ामत की जीत हुई।

कर्बला से पहले क़ैद करने वाले ख़ुद को आज़ाद मान रहे थे और क़ैदी बनाए गए लोगों को क़ैदी समझ रहे थे लेकिन कर्बला के वाक़िए के बाद हमेशा की क़ैद मिली यज़ीदी फ़ौज को, और हमेशा की आज़ादी मिली कर्बला के उन असीरों को जिनके हाथों में रस्सी बाँध कर ज़ालिम लश्कर ये समझता था कि उसने मज़लूमों को क़ैद कर लिया। यज़ीद और उसके गर्वनर इब्ने ज़ियाद को कहाँ मालूम था कि रसूले अकरम[स०] के जिस मोहतरम नवासे को वह क़त्ल करने जा रहा है, उसके लिए ये अमल एक लानत का तौक़ बन जाएगा।

कर्बला की जंग से पहले भी बहुत सी इस्लामी जंगें हुईं, उन जंगों में मुसलमानों को अपनी ताक़त और सदाक़त के बलबूते पर कामयाबी मिली। रसूल[स०] को तो छोटी-बड़ी 86 लड़ाईयों में कुफ़्फ़ार और मुश्रिकों से टकराना पड़ा, लेकिन कर्बला की जंग और ग़ज़वाते रसूल[स०] में एक बड़ा फ़र्क़ ये था कि रसूल[स०] ने जितनी जंगे लड़ीं, उसमें उन्होंने अपने अज़ीज़ों और रिश्तेदारों को जंग के मोर्चे की पहली सफ़ों में रखा और अपने अस्हाब को पीछे की सफ़ों में, क्योंकि रसूले अकरम[स०]

चाहते थे कि उनके ख़ानदान वाले ज़्यादा मुसीबतें बर्दाश्त करें और सहाबा को कम से कम ख़तरों का सामना करना पड़े, यानी इस्लाम भी बच जाए और उनके ज़्यादा साथियों की जानें भी बरबाद न हों, लेकिन इमाम हुसैन[अ०] जब इस्लाम को बचाने के लिए कर्बला के मैदान में आए तो उन्होंने अपने लश्कर को इस तरह तरतीब दिया कि अस्हाब और साथी सबसे आगे थे और अज़ीज़ व रिश्तेदार उनके पीछे थे। इस की वजह ये थी कि कर्बला में जो सब से ज़्यादा देर तक ज़िंदा रहता उसको उतनी ही मुश्किलों का ज़्यादा सामना करना पड़ता। जो सबसे पहले मौत को गले लगाता उसको प्यास की शिद्दत से उतनी जल्दी नजात मिलती और रसूल[स०] के हाथों जामे कौसर अता होता। कर्बला में हर लम्हा इम्तिहान था, हर पल एक नई मुसीबत की आमद थी, ऐसे में इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी जंग के लिए यही हिक्मते अमली मुनासिब समझी कि अस्हाब और दोस्त पहले शहीद हों और गोद के पाले और दिल के टुकड़े बाद में शहीद हों और सबसे आख़िर में ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] ने इस्लाम पर अपनी जान निसार करके इस्लाम की फ़तह की ऐसी तारीख़ लिखीं, जिसमें मज़लूमियत के रंग भरे हैं। इस तस्वीर में उनके छः माह के दूध पीते हज़रत अली असग़र[अ०] की गर्दन से बहता हुआ ख़ून, कड़ियल जवान अली अकबर[अ०] के सीने से उबलता ख़ून, जवान भाई हज़रत अब्बास[अ०] के कटे हाथों से टपकता हुआ ख़ून, भांजों और भतीजों के जिस्मों के पाक बदन से गिरती हुई सुर्ख़ बूँदें शामिल हैं। इसी वजह से उस वक़्त तक हारजीत के जो उसूल और क़ाएदे थे, वह बदल गए, इमाम हुसैन[अ०] के अज़ीज़ और रिश्तेदार और अस्हाब व अंसार की क़ुर्बानियों ने कर्बला के बाद जंग की जीत का मेयार बदल दिया। यहाँ ख़ून बहाने वाले कामयाब नहीं हुए, बल्कि ख़ून के क़तरों ने हुसैनी फ़तह की दास्तान वक़्त के माथे पर लिखा। हालांकि कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि यज़ीद को वक़्ती तौर पर जीत मिल गई थी और अक्सर लोग इस ग़लतफ़हमी का शिकार भी रहे कि यज़ीद को कर्बला में ज़ाहिरी तौर पर जीत मिल गई थी, चुनानचे एक हिन्दू शायर दिवाकर राही का एक शेर भी इस सिलसिले में मौजूद है जो कहते हैं किः

वक़ारे ख़ूने शहीदाने कर्बला की क़सम
यज़ीद मोर्चा जीता है जंग हारा है

लेकिन मैं उनकी राय से इत्तेफ़ाक़ नहीं करता, क्योंकि यज़ीद को कर्बला में न तो ज़ाहिरी तौर पर जीत मिली न बातिनी तौर पर, न तो वह मोर्चा जीत सका न जंग में ही उसको कामयाबी नसीब हुई, क्योंकि इस बार जंग का अंदाज़ बदला हुआ था, इस बार शिकस्त व फ़तह का फैसला इस बात से नहीं होना था कि कौन एक बड़े लश्कर के ज़रिए एक छोटी सी टुकड़ी पर ग़लबा हासिल कर सका, बल्कि फैसला इस बात पर टिका था कि कौन अपने मक़सद में कामयाब रहा। यज़ीद की हार का इससे बड़ा एलान क्या होगा कि ख़ुद उसके बेटे ने उसका जानशीन बनने से इंकार कर दिया। इतना ही नहीं जब यज़ीद को इस बात का एहसास हुआ कि इस्लामी दुनिया में हर तरफ़ से उस पर लानत और मलामत हो रही है तो उसने इमाम हुसैन[अ०] के क़त्ल को अपने फ़ौजी सरदारों के सर थोपने की नाकाम कोशिश की। आले रसूल[स०] का ख़ून बहाकर यज़ीद ने अपनी हुकूमत को क़ुबूल करवाने की जिस तरह कोशिश की थी, उसका अंजाम इतना हैबतनाक होगा, यज़ीद ने कभी ख़्वाब में भी नहीं सोचा था।

ये जो जगह-जगह ताज़ियों के साथ कर्बला के शहीदों की याद में लोग मातम करते चल रहे हैं, ये जो दफ़ और दूसरे जंगी बाजे मुहर्रम के जुलूसों में नज़र आ रहे हैं, ये इस बात को बताते हैं कि यज़ीद अपने मक़सद में कामयाब नहीं हो सका। रसूले पाक[स०] के नवासे ने उस वक़्त की सुपर पावर को इस तरह मात दी कि दुनिया को कहना पड़ा कि........

यज़ीद डूब गया शाम के अंधेरे में
हुसैन[अ०] आज भी ज़िंदा हैं हर सवेरे में

यहाँ मैं कहना ज़रूरी समझता हूँ कि कुछ लोग कहते हैं कि अल्लाह की पनाह इमाम हुसैन[अ०] हुकूमत पर क़ब्ज़ा करना चाहते थे या इक़्तेदार की तलब में घर से निकले थे, लेकिन ये बात बिल्कुल ग़लत है, क्योंकि अगर इमाम हुसैन[अ०] का मक़सद ये होता तो वह ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को अपने साथ लाते, लेकिन मदीने से

लेकर शबे आशूर तक इमाम हुसैन[अ०] ने हर क़दम पर यही कोशिश की कि उनके साथ कम से कम लोग हों, लेकिन जो भी हों वह ऐसे हों, जिनका जवाब ये दुनिया न ला सके। इमाम हुसैन[अ०] जिन बहत्तर साथियों को कर्बला के मैदान में लाए थे वह बहत्तर का अदद नहीं था, बल्कि बहत्तर इकाईयाँ थीं, जिनको इमाम हुसैन[अ०] ने बराबर से लाकर खड़ा कर दिया था, क्योंकि बहत्तर इकाईयों को अगर किसी काग़ज़ पर बराबर लिख दिया जाए तो इतना बड़ा अदद बन जाएगा जिसका हिसाब कोई कल्कुलेटर नहीं लगा पाएगा, इमाम हुसैन[अ०] का हर सिपाही अज़्म व इस्तेक़लाल की एक ऐसी इकाई था, जिसका कोई जवाब नहीं था, इस लिए उनको सिर्फ़ बहत्तर अफ़राद की शक्ल में नहीं देखा जा सकता, बल्कि उनको एक इकाई की शक्ल में रखा जाना चाहिए। इमाम हुसैन[अ०] अपने साथ सब्र के वह नमूने लाए थे जिनको एक फ़र्द की शक्ल में देखा ही नहीं जा सकता इसलिए बहत्तर अफ़राद पर मुश्तमिल ये लश्कर एक लाख के लश्कर से यूँ टकराया कि अबरहा की फ़ौज की तरह यज़ीद की फ़ौज की धज्जियाँ उड़ गईं। इमाम हुसैन[अ०] के बहत्तर सिपाहियों ने यज़ीद की फ़ौजों को ऐसी हार दी कि उसका नाम और निशान बाक़ी नहीं रहा और हुसैनियत का परचम आज तक लहरा रहा है।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा, (उर्दू) 17 दिसम्बर 2010[ई०])

शेष..... लड़ने के लिए बहाना चाहिए...? जी नहीं

माहौल को बिगाड़ने की कोशिश की, लेकिन अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है कि लखनऊ के मुसलमान एक दूसरे का ख़ून बहाने पर तैयार नहीं हुए। कहीं पर फ़सादी तबक़ा फ़साद करवाने में कामयाब नहीं हो सका। इश्तेआलअंगेज़ नारों के ज़रिए शहर की फ़ज़ा ख़राब करने और एक दूसरे के ख़िलाफ़ ज़हर उगल कर फ़साद करवाने की ये चाल भी नाकाम हो गई, लेकिन अफ़वाहों ने पुराने लखनऊ में रहने वालों की नाक में दम कर दिया। हर मिनट पर कहीं न कहीं से फ़साद होने या किसी के मारे जाने की ख़बर आती थी। मोबाइल की इफ़रात के सबब भी अफ़वाहों में इज़ाफ़ा हुआ, मगर ये सब अफ़वाहें झूठी साबित हुईं। 11 मुहर्रम को भी अफ़वाहों का बाज़ार गर्म रहा और एक आद मोहल्ले में बेक़ुसूर रास्ता चलने वालों को ज़ुल्मो सितम का निशाना भी बनाया गया, लेकिन फ़साद फिर भी नहीं हुआ, लेकिन सबसे दिलचस्प बात ये थी कि इन झगड़ों का सबब क्या था वह कोई नहीं बता सका। क्योंकि न तो शियों की तरफ़ से मुआहदे की ख़िलाफ़वर्ज़ी हुई थी न सुन्नियों की तरफ़ से, यानी झगड़ा बेसबब था। आख़िर में शिया और सुन्नी उलमा की एक मीटिंग डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट की रिहाइशगाह पर हुई और उसमें दोनों फ़िरक़ों के लोगों से अम्नो अमान बनाए रखने की अपील की गई। इसके बाद एक और बेहतरीन पहल कुछ शिया और सुन्नी नौजवानों ने की उन लोगों ने 12 मुहर्रम की रात को लखनऊ के निहायत हस्सास इलाक़े विक्टोरिया स्ट्रीट पर एक अम्न मार्च का इन्एक़ाद किया। इस तक़रीब की ख़ास बात ये थी कि शिया नौजवानों का गिरोह सुन्नी आलिमे दीन मौलाना ख़ालिद रशीद फ़िरंगी महली को एक अमन मार्च में बुलाने के लिए फ़िरंगी महल गया और सुन्नी नौजवानों का गिरोह शिया आलिमे दीन मौलाना कल्बे जवाद के घर गया और ये दोनों गिरोह इन उलमा को अपने साथ लेकर पाटानाला चौकी के क़रीब आए, जहाँ दोनों ने शिया और सुन्नी फ़िरक़ों से अम्न क़ायम रखने की अपील की, लेकिन मीडिया ने इस अहम तरीन प्रोग्राम को बिल्कुल नज़र अंदाज़ किया। शायद मीडिया को मुसलमानों के दरमियान फ़साद की ख़बरें ही अज़ीज़ हैं और अम्नो अमान की बातों से उसका कोई मतलब नहीं। मीडिया ने भले ही कवरेज न किया हो, लेकिन इस तरह के प्रोग्रामों के इन्एक़ाद से पता चलता है कि मुस्लिम नौजवान मसलकी फ़सादों को रोकने के लिए कितने एक्टिव हो गए हैं और नई नस्ल के लोग कितनी ज़िम्मेदारी के साथ इत्तेहाद की मशाले रौशन करने में लगे हैं।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 22 दिसम्बर 2010[ई०])